"ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यांसाठी शिक्षणप्रसार"

-शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे

श्री स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था, कोल्हापुर संचालित,

विवेकानंद कॉलेज (स्वायत्त), कोल्हापूर

हिंदी विभाग

शै. वर्ष :- 2018-2019

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के निर्देशानुसार सत्र VI के अंतर्गत मूल्यमापन के तहत

प्रोजेक्ट लेखन

हिंदी पेपर नं. 14

हिंदी साहित्य का इतिहास

प्रोजेक्ट विषय - गद्य विधाओं का विकास

अ.न.	छात्रों के नाम	रोल नं.	हस्ताक्षर
1	नंदीनी आनंदराव काकडे	5570	
2	अजय महेंद्र कांबळे	5574	
3	आकाश सुरेश मानगावे	5615	
4	सचिन बाजीराव सावंत	5697	
5	रोहित एकनाथ सातपुते	5693	
	रोहिणी कृष्णात दाभोळकर	5538	

सहायक प्राध्यापक	हिंदी विभागाध्यक्ष	प्राचार्य
डॉ. डी. आर. तुपे	डॉ. ए. एस. महात	डॉ. एस. वाय. होनगेकर

VIVEKANAND COLLEGE ESTD JUNE 1964 KOLHAPUR-416 003

अनुक्रमणिका

अ.नं.	शीर्षक	पृष्ठ क्र
1)	प्रस्तावना	1
2)	उद्देश्य	2
3)	विषय- विश्लेषण	3 - 8
4)	निष्कर्ष	9
5)	संदर्भ ग्रंथ सूची	10
6)	प्रतिज्ञापत्र	11

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास के सं. 1900 से आज तक के कालखंड को 'आधुनिक काल' कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग को 'गद्य काल' कहा है। पूर्ववर्ती तीन काल खंडों - आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल में केवल पद्य - साहित्य लेखन होता रहा है। हिंदी गद्य साहित्य का उद्भव और विकास आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण घटना है। इसलिए इस युग को 'गद्यकाल' कहा जाता है। इस युग में गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई।

भारतेन्दु युग आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेश द्वार है। भारतेन्दु ने स्वयं गद्य की लगभग सभी विधाओं का प्रारंभ किया। भारतेन्दु को आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का 'जनक' कहा जाता है। भारतेन्दु काल से लेकर आज तक गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास होता रहा।

उद्देश्य

1) हिंदी उपन्यास साहित्य के उद्भव और विकास को समझ सकेंगे।

2) हिंदी नाटक साहित्य के उद्भव और विकास को समझ सकेंगे।

3) हिंदी कहानी साहित्य के उद्भव और विकास को समझ सकेंगे।

4) हिंदी आत्मकथा साहित्य के उद्भव और विकास को स्पष्ट कर सकेंगे।

हिंदी उपन्यास साहित्य
उद्भव और विकास

हिंदी गद्य साहित्य के अन्य अंगों के समान उपन्यासों का उद्भव आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रारंभ में भारतेन्दु काल में हुआ। उपन्यास आधुनिक युग की देन है। हिंदी में उपन्यास साहित्य का प्रारंभ बंगला और अंग्रेजी उपन्यासों के अनुकरण और संपर्क से हुआ है। कुछ विद्वान हिंदी उपन्यास का प्रारंभ संस्कृत से मानते हैं। वे संस्कृत के कादंबरी, दशकुमारचरित आदि कथा-ग्रंथों को उपन्यास मानते हैं।

प्रथम मौलिक उपन्यास -

इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ आलोचक इंशा अल्ला खाँ के रानी केतकी की कहानी को प्रथम उपन्यास मानते हैं। अधिकांश विद्वान 'परीक्षा गुरु' को ही हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं।

विकास

हिंदी उपन्यास साहित्य का वास्तविक प्रारंभ तो प्रेमचंद के उपन्यासों से माना जाता है। प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को उत्कर्ष पर पहुँचाया। प्रेमचंद एक ऐसे केंद्रबिन्दु हैं, जिनके दोनों ओर - उपन्यास साहित्य की भिन्न-भिन्न रेखाएँ दिखाई देती हैं।

तीन कालखंड किए जाते हैं

1) प्रेमचंद पूर्व युग (सन 1882 - 1915)
2) प्रेमचंद युग (सन 1915 - 1936)
3) प्रेमचंदोत्तर युग - (सन 1936 से आज तक)

1) मनोवैज्ञानिक उपन्यास

अनेक उपन्यासकारों ने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतो के आधार पर अपने पात्रों की यौन - ग्रंथियों, दमित वासनाओं, ग्रंथिओं का विश्लेषण अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। मनोवैज्ञानिक सिद्धांतो के आधार पर ~~अपने~~ परंपरा में जैनेन्द्र कुमार, इलाचंद जोशी, अज्ञेय देवराज आदि महत्वपूर्ण हैं जैनेंद्र के उपन्यासों का प्रमुख तत्व मानसिक अन्तर्द्वंद्व का विश्लेषण है। उनकी रचनाएँ 'सुनीता', त्यागपत्र, कल्याणी, त्यागपत्र, सुखदा, आदि में नारी और पुरुष पात्रों की अपेक्षाओं एवं भ्रम का उद्घाटन हुआ है।

2) सामाजिक उपन्यास

सामाजिक उपन्यासों में बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है। समाज सुधार, निम्न मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण तथा समाज की रूढ़ि - परंपराओं और पुराने मूल्यों के प्रति संघर्ष आदि का भी चित्रण है।

3) साम्यवादी उपन्यास

साम्यवादी उपन्यासों में वर्ग विषमता, आर्थिक शोषण, जीवन संघर्ष आदि का चित्रण है। उसी तरह इन उपन्यासों में आर्थिक समस्याओं को साम्यवादी क्रांतिकारी दृष्टिकोण से परखा गया है। लगभग सभी लेखकों ने प्रेम, पाप - पुण्य, विवाह आदि सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति नवीन दृष्टिकोन अपनाने की चेष्टा भी की है। हिंदी के प्रमुख साम्यवादी उपन्यासकार हैं- यशपाल

4) स्वातंत्र्योत्तर काल और प्रायोगिक परंपरा

स्वातंत्रोत्तर काल में उपन्यास शिल्प में नए - नए प्रयोग हुए धर्मवीर भारती का सूरज का सातवाँ घोड़ा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का शिल्प विधान की दृष्टि से प्रयोगशील उपन्यास है।

नाटक - उद्भव और विकास

हिंदी साहित्य में नाटक का वास्तविक प्रारंभ भारतेन्दु काल से ही हुआ। नाटक के उद्भव को लेकर भरत के 'नाट्यशास्त्र' में एक घटना उल्लेखित की गयी है कि देवताओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पाँचवे वेद के रूप में नाट्यवेद की रचना की। कुछ विद्वान भारतीय नाटक को यूनानी नाट्यकला की देन मानते हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार रिवा नरेश विश्वनाथ सिंह कृत 'आनंद रघुनन्दन' हिंदी का पहला नाटक है।

1) ऐतिहासिक नाटक -

ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास की घटनाएँ, सांस्कृतिक वातावरण, मुस्लिम-कालीन भारतीय इतिहास आदि को दिखाने का प्रयास किया गया। इतिहास का उपयोग आदर्शों की स्थापना के लिए किया है। वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंददास आदि प्रमुख ऐतिहासिक नाटककार हैं।

2) भाव-प्रधान नाटक -

कल्पना के आधार पर रचित नाटकों में कुछ नाटक भावप्रधान हैं। शैली की दृष्टि से इन्हें 'गीति नाटक' भी कहा जाता है। इसमें भाव की प्रधानता के साथ साथ पद्य का भी प्रयोग अपेक्षित है। आधुनिक युग में रचित हिंदी का पहला गीतिनाटक प्रसाद कृत 'करुणालय' (1912) है।

3) स्वातंत्र्योत्तर नाटक -

इस युग में नाटक साहित्य का तेजी से विकास हुआ। नए लेखकों ने नई दृष्टि, वस्तु और नए शिल्प का प्रयोग करते हुए नाटक साहित्य को विकसित किया।

कहानी उद्भव और विकास

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही कहानी कहने की परंपरा किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद से यम-यमी, पुरुरवा उर्वशी आदि के संवादात्मक आख्यान उपलब्ध होते हैं। आगे चलकर हमारे वैभिन्न ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाकाव्यों, पुराणों आदि में कहानियों का अगाध भंडार मिलता है। प्राचीन कहानियाँ किसी राजा-रानी के रोमांटिक वृत्तों को उद्घाटित करती थी। आधुनिक कहानियाँ आंतरिक अनुभूतियों सामान्य जन-जीवन एवं स्वाभाविक स्थितियों का चित्रांकन करती हैं।

1) हिंदी कहानी का प्रारंभिक युग 1930 ई तक

हिंदी कहानी साहित्य में इंशा अल्ला खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' (1903) कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना मानी जाती है। इसके बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद कृत 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' को भी उल्लेखित किया जा सकता है।

सन 1900 ई से प्रकाशित इन्दु पत्रिका के माध्यम से हिंदी कहानी के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इसमें जयशंकर प्रसाद तथा अन्य अनेक कहानीकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

कहानी परवर्ती युग 1930 से आज तक

सन 1930 तक आते - आते हिंदी कहानी के क्षेत्र में आदर्श वादिता के स्थान पर यथार्थवादिता, सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिकता तथा राजनीति और धर्म के स्थान पर मनोविश्लेषण की प्रतिष्ठा का प्रयास दृष्टिगोचर होने लगा। वहीं पूर्ववर्ती परंपराओं के साथ अनेक नवीन परंपराओं का उद्भव एवं विकास होने लगा

1) मनोविश्लेषणवादी परंपरा

इस परंपरा में प्रमुखत: जैनेंद्र कुमार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी आदि की कहानियाँ प्रमुखता से आती हैं। जैनेंद्र जी के कहानी संग्रहों में 'वातायन' 'स्पर्धा', फाँसी, पाजेब, जय-संधि, एक रात, दो चिड़ियाँ आदि चर्चित रही हैं।

2) सामाजिक परंपरा

हिंदी के विभिन्न कहानीकारों ने आधुनिक समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का उद्घाटन यथार्थपरक - दृष्टिकोण से किया है। चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने अपनी कहानियों में राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं का चित्रण अत्यंत कलात्मक ढंग से किया है।

हिंदी साहित्य में गद्य लेखन की विभिन्न विधाओं के पश्चात् ही आत्मकथा इस जीवनीपरक विधा का जन्म हुआ है। यह विधा साहित्य की अन्य सभी विधाओं से अधिक विश्वसनीय अर्थात सत्याश्रित मानी जाती है।

जीवनी परख विधा का सूत्रपात आदिकाल के रासो साहित्य चरित काव्य के रूप में भी दृष्टिगोचर होता है। इन चरित काव्यों की प्रामाणिता संदिग्धा होने से इस विधा की शुरुआत यहाँ से मानना तर्क संगत नहीं है

हिंदी में आत्मकथा लेखन की शुरुआत के बाद विभिन्न क्षेत्र से जुड़े अनेक व्यक्तियों ने आत्मकथाएँ लिखी। अन्य भाषा में लिखी आत्मकथाओं का हिंदी में अनुवाद भी हुआ है। आठवे दशक में प्रथमत: मराठी में दलित आत्मकथाएँ लिखना आरंभ हो गया उसका हिंदी आत्मकथा साहित्य पर गहरा प्रभाव हुआ है।

1) आत्मकथा का आरंभिक दौर (सन् 1850-1942)

2) आत्मकथा विकास यात्रा - उत्कर्ष युग - (1942 से अब तक)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) हिंदी साहित्य का इतिहास
रामचंद्र शुक्ल

2) हिंदी साहित्य का इतिहास
डॉ नागेंद्र

3) साहीत्यिक निबंध
डॉ विजयपाल सिंह

4) साहित्यिक निबंध
डॉ शांति स्वरूप गुप्ता

5) हिंदी साहित्य उद्भव और विकास
हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रतिज्ञापत्र

हम शपथपूर्वक घोषित करते हैं कि, प्रस्तुत प्रोजेक्ट लेखन का कार्य हमारे खुद के प्रयत्नों का परिणाम है। हमारी जानकारी के अनुसार इस विषय पर अब तक स्वतंत्र रूप से कोई कार्य संपन्न नहीं हुआ है। यह प्रोजेक्ट हमारे विषय अध्यापकों के मार्गदर्शन तथा संदर्भ स्रोतों के आधार पर संपन्न हुआ है।

अ.क्र	छात्रों के नाम	हस्ताक्षर
1)	नंदीनी आनंदराव काकडे	Mkakde.
2)	अजय महेंद्र कांबळे	[illegible]
3)	आकाश सुरेश मानगावे	
4)	सचिन बाजीराव सावंत	
5)	रोहिणी कृष्णात दाभोळकर	
6)	रोहित एकनाथ सातपुते	RRd Rohit

"ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यांसाठी शिक्षणप्रसार"

-शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे

श्री स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था, कोल्हापुर संचालित,

विवेकानंद कॉलेज (स्वायत्त), कोल्हापूर

हिंदी विभाग

शै. वर्ष :- 2018-2019

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के निर्देशानुसार सत्र VI के अंतर्गत मूल्यमापन के तहत

प्रोजेक्ट लेखन

हिंदी पेपर नं. 13

साहित्यशास्त्र

प्रोजेक्ट विषय -नाटक के पाश्चात्य तत्व

अ.न.	छात्रों के नाम	रोल नं.	हस्ताक्षर
1	नंदीनी आनंदराव काकडे	5570	
2	अजय महेंद्र कांबळे	5574	
3	आकाश सुरेश मानगावे	5615	
4	सचिन बाजीराव सावंत	5697	
5	रोहित एकनाथ सातपुते	5693	
6	रोहिणी कृष्णात दाभोळकर	5538	

सहायक प्राध्यापक	हिंदी विभागाध्यक्ष	प्राचार्य
डॉ. डी. आर. तुपे	डॉ. ए. एस. महात	डॉ. एस. वाय. होनगेकर

VIVEKANAND COLLEGE ESTD JUNE 1964

अनुक्रमणिका

अ.नं	शीर्षक	पृष्ठ क्र.
1)	प्रस्तावना	1
2)	उद्देश्य	2
3)	विषय - विश्लेषण	3 – 11
4)	संदर्भ ग्रंथ सूची	12
5)	प्रतिज्ञापत्र	13

प्रस्तावना

भारतेन्दु युग में गद्य की अनेक विधाओं का प्रस्फुटन हुआ। उपन्यास, नाटक, कहानी, डायरी, निबंध, एकांकी आदि गद्य विधाओं का विकास आधुनिक काल में हुआ। इनमें से इस पाठ्यक्रम में नाटक उपन्यास और डायरी विधाओं का समावेश किया गया है। इन विधाओं के तात्विक विवेचन के बारे में हमें यहाँ सोचना है। नाटक के पाश्चेमि तत्व, उपन्यास का स्वरूप तथा उपन्यास के तत्व और प्रकार, डायरी का स्वरूप तथा तत्व और प्रकार आदि तात्विक मुद्दों के संदर्भ में हमें प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करना है।

आधुनिक काव्य की विभिन्न विधाओं में नाटक सर्वाधिक प्राचीन विधा मानी जाती है। विविध विद्वानों द्वारा दिए गए तत्वों के आधार पर ही नाटक का विकास हुआ है। पाश्चात्य-विद्वानों ने निश्चित किए गए तत्व निम्न प्रकार है।

2)

उद्देश्य

1)	हिंदी नाटक, उपन्यास एवं डायरी के विविध मानदंडो के आधार पर छात्रों में समीक्षण की क्षमता निर्माण करना।
2)	छात्रों की हिंदी नाटक, उपन्यास एवं डायरी के आस्वादन की क्षमता विकसित करना।
3)	साहित्य कृतियों के माध्यम से साहित्य के शिल्प एवं सौंदर्य से परीचित करना।
4)	नाटक के पाश्चिमी तत्वों से परीचित कराना।
5)	गद्य की प्रमुख विधाओं के तात्विक स्वरूप का परिचय देना।

कथावस्तू

पाश्चात्य नाट्यशास्त्रीयों ने नाटक के कथानक को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। अरस्तु ने कथानक को नाटक की आत्मा कहकर उसकी विशेषताएँ बताते हुए स्पष्ट किया है कि वह अपने आप में समग्र और पुर्ण होना चाहिए। प्रेक्षक का आकर्षण बना रहने के लिए नाटक की कथावस्तु सुव्यवास्थित, परिमार्जित तथा संक्षिप्त होनी चाहिए नाटक की कथावस्तु इतनी सुक्ष्म नहीं होनी चाहिए की प्रेक्षक के मन में उसका बिम्बन बन सके और न इतनी विराट हो कि वह मन में समान सके

सहज विकास और ~~हो कि वह मन में समान~~ कुतूहल को अरस्तु ने कथावस्तु का महत्त्वपूर्ण गुण माना है। आरस्तु ने साधारिकरण को तबंध कल्पना का मुल आधार मानकर बताया है कि कथानक की एक सार्वभौम रूपरेखा बना लेनी चाहिए जिसके साथ सभी का तादात्म्य सके। आरस्तु के मतानुसार जो घटनाएँ असंभाव्य हैं। उन्हे कथावस्तु में स्थान नहीं मिलना चाहिए क्योंकी वे मानव मन को प्रभावित नहीं कर सकती नाटक में कथाविकास या कार्य से पाँच अवस्थाएँ मानी जाती हैं।

a) प्रारंभ -

नाटक के प्रारंभ में मुख्य कल्य की इच्छा का प्रकट होना ही प्रारंभ है।

b) प्रयत्न -

मुख्य फल्य की प्राप्ती के लिए संघर्ष तथा 'यत्न' करना प्रयत्न है।

c) प्राप्त्याशा -

यहाँ प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मुख्य फल के प्राप्त होने की संभावना हो जाय, वहाँ 'प्राप्त्याशा' है।

d) नियताप्ति -

जब सभी विघ्नों के दूर हो जाने पर मुख्यफल की प्राप्ती निश्चित हो जाए, तब वहाँ 'नियताप्ति' होती है।

e) फलागम -

जब सम्पुर्ण फल की प्राप्ती हो जाए तो वह फलागम - अवस्था कहलाती है। कथावस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए उसे पाँच अवस्थाओं में विभाजित किया गया है।

1) प्रारंभिक अवस्था -

नाटक का प्रारंभ प्रस्तावना द्वारा अथवा बिना प्रस्तावना के दोनो प्रकार से किया जा सकता है। प्रारंभिक घटना रोचक और नाटकीय होनी चाहिए। प्रारंभ से ही कौतुहल उत्पन्न किया जाता है और कार्योंका परस्पर संबध जोडकर कौतुहल की - सृष्टीकी जाती है।

2) विकास -

इसमें उन परिस्थितीयों और घटनाओं को प्रस्तुत किया जाता है। जो किसी नई समस्या को जन्म देती है।

3) चरमसीमा -

संघर्ष और उसकी चरमसीमा ये सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है, जिनपर पाश्चात्य नाटक की शक्ती और प्रभाव निर्भर करता है।

4) उतार या निगति -

इसमें एक पक्ष की विजय निश्चेत हो जाने से कथा वस्तु में उतार आ जाता है। इस स्थिती में आकर घटनाएँ सुलझने लगती हैं। परिणाम की ओर अग्रेसर होनेवाली कथा वस्तु की गति धीमी पड जाती है।

5) अन्त या समाप्ति -

यह समाप्ती अवस्था है। घटना - चक्र की संपूर्ण समाप्ती सभी संघर्षों को आन्तिम रूप प्रदान कर उद्देश्य को उजागर कर देती है। समस्या का समाधान हो जाता है।

पात्र तथा चित्र-चित्रण

नाटक की सजीवता एवं प्रभावकारिता में 'चरित्र-चित्रण' का विशेष महत्व है। जहाँ तक हो सके प्रत्येक पात्र का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक होना चाहिए। अपने विचारों को नाटककार पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। नाटक में पात्र तथा चरित्र-चित्रण का विशेष महत्व है। सामान्यतः नाटक में नायक, प्रतिनायक, नायिका तथा शेष अन्य स्त्री-पुरुष पात्र के रूप में प्रयुक्त होते हैं। वास्तव में 'नायक का विरोधी या' खलनायक' होता है। जो नायक के मार्ग पर रोड़े अटकाता है। संघर्ष करता है। 'नायिका' नायक की पत्नी अथवा प्रेयसी होती है। जो नायक को प्रेरणा देती है। और नाटक में आकर्षण का केंद्र बनी रहती है। इनके अतिरिक्त अन्य पात्र नायक अथवा प्रतिनायक के सहायक रूप में आते हैं।

नाटककार कथावस्तु, घटनाओं और कथोपकथन द्वारा ही पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करता है। चरित्र-चित्रण की तीन प्रमुख विधियां हैं

१) कथोपकथन द्वारा, २) स्वागत कथन द्वारा ३) पात्रों के कार्य कलाप द्वारा नाटककार को यह ध्यान देना पड़ता है कि उसके पात्र स्वाभाविक ढंग से विकसित हो रहे हैं या नहीं। वह अपने पात्रों को अपने हाथ की कठपुतली नहीं बनाता नाटककार जिन पात्रों के चरित्र में आकस्मिक परिवर्तन करता है उसका मनोवैज्ञानिक कारण भी देता है। चरित्र-चित्रण के छः अधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए अरस्तु ने उन्हें संभाव्य तथा भाव्य यथार्थ की संज्ञाएँ प्रदान की हैं।

7

a) भद्रता -
अरस्तु ने चरित्रों की विशेषताओं में भद्रता को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। भद्रता ऐसा नैतिक गुण है जो वर्ग-भेद, सामाजिक स्थिती आदि अप्रभावित रहता है।

b) औचित्य -
पात्रांकन में उसकी प्रकृति तथा वर्गगत विशेषताएँ रहनी चाहिए और इन्ही के द्वारा औचित्य की रक्षा होती है।

c) जीवनानुरूपता -
अरस्तु का मानना है कि, चरित्र जिवन के अनुरूप होने चाहिए। इस गुण को अरस्तु ने भद्रता और औचित्य से भिन्न माना है। वे पात्रों को जिते-जागते, स्वाभाविक और यथार्थवादी रूप में सक्रीय होते देखना चाहते हैं।

d) एकरूपता -
चरित्र में एकरूपता होनी चाहिए। हो सकता है कि मूल अनुकार्य के चरित्र में हि अनेकरूपता ही एकरूप होनी चाहिए।

e) संभाव्यता -
कथानक के संगठन की भाँती चरित्र-चित्रण में भी कवि को सैं सदैव संभाव्य को ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। जैसे संभाव्य पूर्वापर क्रम से एक के बाद दुसरी घटना आती है, वैसे हि संभावना नियम के अधीन विशिष्ट चरित्र के व्यक्ति को अपने हि विशिष्ट ढंगा से बोलना या काम करना चाहिए।

f) भव्य सामर्थ्य -
कलाकार को कल्पना और भावना के द्वारा लक्ष्यार्थ को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए की वह सुंदर बन जाए तथा उसमें एक नवीन आकर्षण उत्पन्न हो सके।

कथोपकथन या संवाद

नाटककार की कुशलता एवं अभिव्यक्ति शैली के दर्शन कथोपथन या संवाद में होते हैं। कथोपथन या संवाद को नाटक का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। संवाद जितने ही चुस्त, फड़कते हुए, प्रभावशाली एवं सूक्ष्म होंगे नाटक उतना ही चमत्कार पूर्ण लगेगा। उत्तम कथोपकथन में सरलता, सुंदरता, धारावाहिकता, संक्षिप्तता के गुण होते हैं। संवादों द्वारा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है और कथावस्तु को गति मिलती है। नाटककार को इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि उसके पात्र एक भी अनावश्यक वाक्य न बोले, अन्यथा रोचकता में शून्यता आ जाती है।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने संवाद के तीन भेद बतलाए हैं:

a) सर्वश्राव्य -

इस प्रकार के संवाद सबको सुनाने के लिए होते हैं।

b) नियतश्राव्य -

इसमें कुछ निश्चित पात्रों को सुनाने के लिए संवाद होते हैं। इसमें कुछ गोपनीयता होती है। यह दो प्रकार के होते हैं - 1) अपवारित 2) जनान्तिक

c) अश्राव्य -

इसमें कोई पात्र अपने अन्तर्द्वन्द्व को स्वत: प्रकट करता है, मानो वह किसी को सुना नहीं रहा। इसे ही स्वगत कथन कहते हैं। इसी को 'आकाशभाषित' भी कहते हैं। क्योंकी इसमें पात्र आकाश की ओर देखता हुआ स्वयं अपने से ही बातें करता है।

देश-काल वातावरण

ऐतिहासिक नाटक हो अथवा सामाजिक उसमें देशकाल परिस्थिती का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष चित्र अवश्य रहता है। पात्र जिन घटनाओं और समस्याओं को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हैं वे भी किसी समाज विशेष केंद्र काल विशेष में सजीव होनेवाले अंग होते हैं। इस प्रकार वातावरण का चित्रण नाटक का अनिवार्य अंग है। देश काल वातावरण के अनुकूल चित्रण स्वाभाविक माना जाता है। वांछित प्रभाव डालने के लिए ऐतिहासिक नाटकों में उस युग के रिती - रिवाज, रहन - सहन, वेश -भूषा, संबोधन और सांस्कृतिक जीवन के इन तत्वों को उभारना होता है जिनकी सहायता से दर्शक के लिए यथार्थ का भ्रम उत्पन्न किया जा सके। पात्रों के अभिनय को जिवंत बनाने एवं कथावस्तू में सजिवता लाने के लिए देश - काल और वातावरण की स्वाभाविकता अवश्य है। इस तत्व की अवतारणा तीन प्रकार से कि जा सकती है। 1) पात्रों की वेशभूषाद्वारा, 2) पात्रों की भाषा द्वारा, 3) तत्कालिन अवस्था के चित्रण द्वारा 'संकलन त्रय' के कारण नाटक में स्वाभाविकता आती है। संकलन त्रय के अंतर्गत स्थान की एकता और कार्य की एकता आती है।

a) स्थान की एकता -

जो घटना जिस स्थल की हो या जिन व्यक्तियों से - संबंध है, वाहि वहाँ उपस्थित रहें। किसी एक दृश्य में दिखाए गए पात्र तुरंत ही दूसरे दृश्य में न दिखाई ~~गए पात्र~~ जाए क्योंकी कुछ ही क्षणों में लंबे स्थान की दूरी तय कर लेना अस्वाभाविक है।

b) काल की एकता -

नाटक में चित्रित घटनाओं के कालक्रम का ध्यान रखना चाहिए। जो घटना पूर्व घटित हो, उसका चित्रण पूर्व और जो पश्चात घटी हो उसका पश्चात चित्रण होना चाहिए। नाटक में प्रदर्शित दो घटनाओं की समय दूरी इतनी न हो की दो घटना पूँ दो अलग काल की लगे।

c) कार्य की एकता -

इसका तात्पर्य यह है कि कथावस्तु का कोई एक मुख्य सिद्धांत हो, प्रासंगिक कथाओं के समुचित संगठन तथा स्वाभाविक अभिनय का ध्यान रखना आवश्यक है। वस्तुत: मुख्य कथा की ही प्रधानता रहनी चाहिए गौण कथाएँ उसकी सहायक बन कर रह सकती है। इस प्रकार नाटक में एक रसता और प्रभावात्मकता बनी रहती है।

अभिनेयता

अभिनय के कारण ही नाटक को 'दृश्य काव्य' की संज्ञा प्राप्त है। अभिनेय नाटक ही विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं। नाटक का निर्माण रंगमंच पर अभिनीत होने के लिए ही होता है। अतः 'अभिनेयता' को पाश्चात्य विद्वानों ने नाट्य तत्व के रूप में स्वीकार किया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने रंगमंच की सुविधा को ध्यान में रखकर कथानक का विभाजन तीन अंको और दृश्यों में स्वीकार किया है। प्रत्येक अंक का अंत कौतूहल बढाने का कार्य करना है। पात्रों से संबंधित संघर्ष भी अभिनय के लिए उपयुक्त होना है। कथोपकथन और उसकी भाषा का रंगमंच के लिए सहज और स्वाभाविक होना भी अभिनय के लिए उपयुक्त होता है। नाटक में अभिनय के अंतर्गत कुछ रंग निर्देश भी होते हैं। पाश्चात्य विद्वान अरस्तु ने नाटक के सकल अभिनय के लिए 'संकलन त्रय' का उल्लेख किया है। इस संकलन त्रय के पालन से ही नाटक अभिनयात्मक बन सकता है तथा उसमें एक रसता और प्रभावात्मकता बनी रहती है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

काव्यशास्त्र -
भगीरथ मिश्र

काव्य के अंग -
डॉ. लक्ष्मीदत्त गौतम

साहित्यशास्त्र -
डॉ. नारायण शर्मा

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र
डॉ. यतीन्द्र तिवारी

भारतीय काव्यशास्त्र -
डॉ अशोक के शाह

प्रतिज्ञापत्र

हम शपथपूर्वक घोषित करते हैं कि, प्रस्तुत प्रोजेक्ट लेखन का कार्य हमारे खुद के प्रयत्नों का परिणाम है। हमारी जानकारी के अनुसार इस विषय पर अब तक स्वतंत्र रूप से कोई कार्य संपन्न नहीं हुआ है। यह प्रोजेक्ट हमारे विषय अध्यापकों के मार्गदर्शन तथा संदर्भ स्रोतों के आधार पर संपन्न हुआ है।

क्र.सं	छात्रों के नाम	हस्ताक्षर
1)	नंदीनी आनंदराव काकडे	Nkakade
2)	अजय महेंद्र कांबळे	[signature]
3)	आकाश सुरेश मानगावे	
4)	रोहिणी यशवंत दाभोळकर	RRd
5)	सचिन बाजीराव सावंत	
6)	रोहित एकनाथ सातपुते	Rohit